Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

श्रीमद्भगवद्गीता में पुनर्जन्म की अवधारणा

पूनम यादव
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश,भारत

शोध आलेख सार – भारतीय पुनर्जन्म का चिन्तन मानवमात्र को सन्मार्गोन्मुखी बनाने के लिए एक शिव शिक्षा है। मानव के ज्ञान के उन्मेष उसकी सद्कृति से ही प्रस्फुरित होता है। व्यक्ति की सद्कृति उसे पुनर्जन्म में भी दैवीय वृत्ति प्रदान करती है। जो व्यक्ति विशेष के आत्मा की मुक्ति का साधन बनती है। इस दृष्टि से गीता का पुनर्जन्म चिन्तन मानव को सद्वृत्ति देते हुए उसके कल्याण का साधन है।

मुख्य शब्द– श्रीमद्भगवद्गीता, वेदव्यास, महाभारत, भीष्मपर्व, ब्रह्म।

''श्रीमद्भगवद्गीता'' श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासकृत महाभारत के भीष्मपर्व का पच्चसीवें अध्यास से बयालिस अध्याय तक का संग्रह है। अट्ठारह अध्यायों का यह ग्रंथ सात सौ श्लोकों में निबद्ध है। श्रीमद्भगवद्गीता प्रस्थानत्रयी में प्रसिद्ध है। गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र। ये तीनों प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत प्रमाणित हैं। ये ग्रंथ मनुष्य को आत्मा से साक्षात्कार करने में सहायक सिद्ध हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता मानव जीवन को उत्कृष्ट, समुन्नत, सार्थक एवं श्रेष्ठ बनाने का मार्गदर्शन है। गीता के अनुसार मुक्ति या शान्ति वह व्यक्ति ही प्राप्त करता है, जिसकी समस्त कामनायें उसी में प्रविष्ट हो जाती है। वस्तुतः कामनाओं में रमा हुआ व्यक्ति कभी शक्ति नहीं पाता।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे,
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।[1]

अतः व्यक्ति को परब्रह्म से मिलन की शुभेच्छा करना चाहिये, जिससे पुनर्जन्म नहीं होता।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्तम्।
नाप्नुवन्ति महात्मनः संसिद्धिं परमांगताः।।[2]

भौतिक जगत् में यह नियम सब लोग जानते हैं कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया अनिवार्यतः होती है। जो जैसा करेंगा, वैसा उसे भोगना पड़ेगा। प्रत्येक कर्म का उसके तदनुरूप फल भोगना ही पड़ता है। आत्मा की उन्नति

तथा जगत् में धार्मिक भाव–सुख, शान्ति एवं प्रेम विस्तार के लिए और पाप–ताप से बचने के लिए परलोक और पुनर्जन्म को मानना परम आवश्यक है।

प्राचीनतम् भारतीय वाङ्गमय वेद ब्राह्मण और उपनिषद् के आख्यान पुनर्जन्म के संदर्भों परिचित हैं। वाल्मीकीय रामायण और महाभारत भी पुनर्जन्म के विवरण को प्रस्तुत करते हैं। मनु–सतरूपा की तपस्या के, फलस्वरूप जन्मान्तर में उन्हें विष्णु रूप श्रीराम की पुत्ररूप में प्राप्ति हुई थी।

इसी प्रकार अष्ट वसुओं में से एक वसु जन्मान्तर में भीष्म के रूप में जन्म ग्रहण किया थे। इस प्रकार भारतीय संस्कृत वाङ्गमय में अनेक ऐसे कथा प्रसंग है जो पुनर्जन्म की पुष्टि करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण अपने और अर्जुन के अनेकानेक जन्मों का उल्लेख करते हैं।

बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।[3]

पुनर्जन्म का माध्यम ''मृत्यु'' है। ''मृत्यु'' शरीर और आत्मा (नाशवान और अविनाशी) के संयोग की समाप्ति है। जबकि ''जननमिति जन्म'' पैदा होने का नाम जन्म है।

जनी प्रादुर्भावे दिवादि आत्मने सेट, धातु से ''सर्वधातुभ्यो मनिन्'' (4/144) इस उष्णादि मनिन् प्रत्यय होने पर ''जन्म'' शब्द बनता है। इसी के पर्याय वाचक **''जनुः जननं, जनिः उत्पत्तिः, उद्भवः''**[4] ये प्रसिद्ध है। पुनः जन्म = पुनर्जन्म।

इसके अन्य नाम– पुनर्जन्म, गतजन्म, पुनर्भव, परलोक, प्रेत्यभाव इत्यादि हैं। इनमें ''पुनर्जन्म'' का प्रयोग सब उपनिषदों की सारभूत ''श्रीमद्भगवद्गीता'' में मिलता है।

'तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।'[5]

आदि श्लोकों में नारायण के पुनर्जन्म की कथाएँ अनादिकाल से प्रसिद्ध हैं। अन्तर केवल इतना है कि जीव अविद्या में है और ईश्वर अविद्या से मुक्त है। बार–बार जन्म दोनों के होते हैं।

बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तब चार्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि नत्वं वेत्थ परन्तप।।[6]

भगवान् कहते हैं – हे, अर्जुन! हमारे और तुम्हारे बहुत से जन्म व्यतीत हो चुके हैं, इन सबकों मैं जानता हूँ, तुम नहीं जानते। (क्योंकि मैं विद्यातत्व से युक्त हूँ और तुम अविद्या में हो)।

दो पक्षी एक वृक्ष पर बैठे हुए हैं। एक वृक्ष के स्वादिष्ट फलों को खा रहा है, दूसरा केवल साक्षी रूप से देख रहा है। राग, द्वेषमय अविद्या के साथ अभ्यास होकर अहं–मम के अभिमान से जीव संसारिक सुख–दुःखों में बंधा हुआ है। यह व्यवहार से हुआ, इसके आरम्भ का ज्ञान न होने से इसे अनादि कहा गया–

नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।[7]

सत्य, रज, तम, त्रिगुणों के प्रभाव से जीव ऊँच–नीच कर्मों को करता है और उसी के अनुसार अनेक योनियों में घूम रहा है। यही पुनर्जन्म का कारण हैं। इसी को यम ने कहा हैं–

''पुनः पुनर्वशमाद्यते ये।''[8]

बार–बार रागद्वेषात्मक कर्मफलों में आसक्त रहने से जीव जन्म–मरण के चक्र में पड़े रहकर हमारे वश में रहते हैं।

जीवात्मा जब अपने पूर्व स्थूल शरीर को छोड़कर दूसरे स्थूल शरीर में प्रवेश करता है, तब सूक्ष्म शरीर के साथ ही जाता है। भगवान् कपिल मुनि माता देवहूति से जन्म, मृत्यु का रहस्य कहते हैं–

जीवो हास्यानुमो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः।
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः।।[9]

जीव एक लोक से दूसरे लोक में जाता है, यह असम्भव नहीं है। वह अपने उपाधिमय लिङ्ग शरीर को धारण करके परलोक गमन करता है। नवीन देह में नवीन कर्मों में प्रवृत्त होता है और वह अपने कर्मों के अनुसार फल भोगता है।

भगवान् वेदव्यास जी ने प्राणी के असंख्य जन्म होने का उल्लेख किया है–

मातापितृ सहस्त्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे।।[10]

इसी प्रकार गीता में भी पुनर्जन्म की विस्तृत व्याख्या की गई है। भगवान् अर्जुन से कहते हैं।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।[11]

किसी काल में मैं नहीं था और तू नहीं था तथा ये राजा लोग नहीं थे, यह बात भी नहीं है, और इसके बाद हम सब नहीं रहेंगे, यह बात भी नहीं है।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तर प्राप्तिधीरिस्तत्र न मुह्नति।।[12]

देहधारी के इस मनुष्य शरीर में जैसे (बालकपन) जवानी और वृद्धावस्था होती है, ऐसे ही दूसरे शरीर की प्राप्ति होती है। उस विषय में धीर मनुष्य और मोहित नहीं होता।

जीव स्वयं तो निरन्तर अमरत्व में ही रहता है। जीव के गर्भ में आते ही मृत्यु का यह क्रम आरम्भ हो जाता है। गर्भावस्था मरती है, तो बाल्यावस्था आती है। बाल्यावस्था मरती है, तो युवावस्था आती है। युवावस्था मरती है तो वृद्धावस्था आती है। वृद्धावस्था मरती है तो देहान्तर अवस्था आती है। अर्थात् दूसरे जन्म की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार शरीर की अवस्थाएँ बदलती हैं, पूरे उसमें रहने वाला शरीरी ज्यों का त्यों रहता है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[13]

यह आत्मा (शरीर) किसी काल में भी न हो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है, क्योंकि यह अजन्म, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता। उत्पन्न होना, सत्तावाला दीखना, बदलना, बढ़ना, घटना और नष्ट होना ये छः विकार शरीर में ही होते हैं। शरीरी (आत्मा) में वे विकार कभी हुए नहीं, कभी होंगे नहीं, कभी भी हो सकते नहीं है।

वासांसि जीर्णानि यया विहाय नवानि गृह्यति ग्रहवति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।[14]

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा (देही) पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।

जैसे कपड़े बदलने से मनुष्य बदल नहीं जाता, ऐसे ही अनेक शरीरों को धारण करने और छोड़ने पर भी शरीरी (जीवात्मा) वहीं का वहीं रहता है, बदलता नहीं।

गीता में कहा गया है कि शस्त्र इस शरीर को काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती। जल इसको गीला नहीं कर सकता और वायु इसको सुखा नहीं सकती।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

ने चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।[15]

गीता में स्पष्ट कहा गया है कि–

''जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।''[16]

जो जन्म लिया है उसकी जरूरी मृत्यु होगी और मरे हुए का जरूर जन्म होगा। इसलिए भगवान् कहते हैं कि–

बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।[17]

हे परन्तप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन सबको मैं जानता हूँ, पर तू नहीं जानता।

भगवान् कृष्ण ने अनेक बार अर्जुन को जीवन मरण की वास्तविक स्थिति से अवगत कराया है, जिससे पुनर्जन्म स्पष्ट सिद्ध होता है।

पुनर्जन्म का आधार कर्म ही है। उसका फल भोगने के लिए ही पुनर्जन्म लेना पड़ता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

अन्त समय में जिन–जिन भावों का स्मरण करते हुए मनुष्य देह त्याग करता है, अर्जुन! वह सदा उसी भाव से प्रभावित रहता है और वही सही भाव उस भाव के अनुरूप देह प्राप्त करत है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।[18]

मरण के समय प्राणी की भावनाएँ अपने–अपने कृत कर्मों तथ निर्मित वृत्तियों के अनुसार होती हैं और जिस–जिस भावना को लेकर जीव शरीर छोड़ता है, उसी भावना के अनुकूल उसे आगामी शरीर मिलता है।

हम जैसा कर्म करते हैं, वैसा ही संस्कार बनता है, और उन्हीं संस्कारों के अनुसार हमें आगामी शरीर मिलती है।

वेदान्त, सांख्यदर्शन तथा योगदर्शन द्वारा प्रतिपादित बंधन और मोक्ष का सिद्धान्त भारतीय जीवन दर्शन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। अपने सांसारिक जीवन में मनुष्य प्रकृत के बन्धन में होता है। मनुष्य का निर्माण शाश्वत आत्मा और नश्वर शरीर के योग से हुआ है और मृतयु के बाद भी परलोक में उसका अस्तित्व विद्यमान रहता है। यह दार्शनिक सिद्धान्त का आधार पराइन्द्रिय ज्ञान है, जो योग साधना द्वारा समाधि अवस्था में प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार दार्शनिक दृष्टिकोण से लोक और पारलोक के बीच इस मानव चक्र (Human Cycle) अथवा आवागमन की इस प्रक्रिया को ही शास्त्रों में ''पुनर्जन्म'' का सिद्धानत कहा गया है। इस ''मानव–चक्र'' को अवरूद्ध कर निरपेक्ष सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लेना अथवा मोक्ष को प्राप्त हो जाना ही मनुष्य का सबसे बड़ा पुरुषार्थ है और इसके लिए योग साधना की आवश्यकता पड़ती है।

इस प्रकार कर्मसरिता प्रवाह में बहती हुई जीवन नौका के पूर्वजन्म और पुनर्जन्म दो किनारे हैं। पूर्वजन्मकृत कर्म इस जन्म के तथा इस जन्म के कृत कर्म पुनर्जन्म धारण कराने के हेतु है।

वाल्मीकि रामायण में श्री लक्ष्मण जी गुहराज से कहते हैं–

कः कस्य हेतुर्दुःखस्य कश्च हेतुः सुखस्य वा।

स्वपूर्वार्जितकर्मैव कारणं सुखदुःखयोः।

अर्थात् कौन किसके दुःख का हेतु है तथा कौन सुख का? दूसरा कोई किसी दूसरे के दुःख सुख में कारण नहीं होता। पूर्व जन्म में किये हुए अपने ही पुण्य या पापात्मक कर्म मनुष्य को सुख दुःख का भोग प्रदान करते हैं।

इस प्रकार कठोपनिषद् में कहा गया है, ''मृत्यु के पश्चात् इन जीवात्माओं में से अपने–अपने कर्मों के अनुसार कोई–कोई तो वृक्ष, पाषाण आदि अन्यत्र शरीर को धारण करते हैं।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।

स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।[19]

भोग और संग्रह की आसक्ति से ही पुनर्जन्म होता है। इसलिए जिस मनुष्य ने भोग और संग्रह की आसक्ति है, वह यदि पुण्य कर्मों के प्रभाव से ब्रह्मलोक तक चला जाय, तो उसे लौटकर जन्म–मरण में अर्थात् दुःखालय संसार में आना ही पड़ता है। ब्रह्मलोक तक सब कर्मों का फल है। परमात्मा की प्राप्ति होने पर फिर वहाँ से लौटकर इस संसार में नहीं आना पड़ता। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं–

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते।।[20]

श्रीमद्भगवद्गीता कर्म के आधार पर ही पुनर्जन्म और विविध योनियों का विवरण प्रस्तुत करती है तथा कर्मानुसार ही दैवीय एवं आसुरी वृत्तियों का तथा उनके परिणामों का चिन्तन एवं विवेचन भी प्रस्तुत करती है। यह जीव अपने प्रारब्ध के अनुसार ऊपर या नीचे आता है। अथवा मध्य में रहता है। प्रारब्ध में यदि सत्वगुण की प्रबलता रही, तो मृत्यु के बाद वह स्वर्गादि उच्च लोकों को जाता है, यदि रजोगुण प्रबल हुआ, तो वह मनुष्यलोक में ही रहता है, अर्थात् मृत्यु के उपरान्त पुनः मनुष्य योनि में ही जन्म लेता है, और यदि तमोगुण का प्राबल्य रहा तो वह अद्योगपति को प्राप्त होता है अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियों में जन्म लेता है।

गीता में कहा भी गया है–

उर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्वे तिष्ठन्ति राजसाः।

जघन्यगुणवृक्षिस्था अधो गच्छन्ति तामसः।।[21]

पुनर्जन्म का सिद्धान्त इस बात को स्वीकार करता है, कि मनुष्य योनि प्राप्त होने के बाद भी जीव निम्न योनियों में जा सकता है। जीव अपने पुण्यकर्मों के भोग लिए स्वर्गादि उच्च लोकों में जाता है, वैसे ही जघन्य पाप कर्मों के फल भोग के लिए निम्न योनियाँ भी भोग योनियाँ हैं। एक मात्र मनुष्य योनि ही कर्मयोनि है, जहाँ मनुष्य कर्मों के द्वारा अपनी नियति का, अपने भावी जीवन का निर्माण कर सकता है।

इस प्रकार भारतीय पुनर्जन्म का चिन्तन मानवमात्र को सन्मार्गोन्मुखी बनाने के लिए एक शिव शिक्षा है। मानव के ज्ञान के उन्मेष उसकी सद्कृति से ही प्रस्फुरित होता है। व्यक्ति की सद्कृति उसे पुनर्जन्म में भी दैवीय वृत्ति प्रदान करती है। जो व्यक्ति विशेष के आत्मा की मुक्ति का साधन बनती है। इस दृष्टि से गीता का पुनर्जन्म चिन्तन मानव को सद्वृत्ति देते हुए उसके कल्याण का साधन है।

सन्दर्भ

1. गीता 2/70
2.गीता 8/15
3.गीता 4/5
4.अमरकोष – 1/4/30
5. गीता 8/16
6. गीता 4/5
7.गीता 15/3
8.कठ0 1/2/6
9. श्रीमद्भागवत 3/31/44
10. महाभारत

11. गीता 2/12

12. गीता 2/13

13.गीता 2/20

14. गीता 2/22

15. गीता 2/23

16. गीता 2/27

17. गीता 14/5

18. गीता 8/6

19.कठोपनिषद् 2/2/7

20. गीता 18/16

21.गीता 14/18